भारतीय दृष्टिकोण में बुद्धिमत्ता की अवधारणा - श्रीमद् भगवद्गीता के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. धार्मिनीबहन के. जोशी

बुद्धि का यद्यपि कोई साकार रूप नहीं होता है। फिर भी प्राचीनकाल से ही उसे परिभाषित किया जाता रहा है। यहाँ तक कि हमारे हिन्दी के सर्वमान्य कवि **तुलसीदास** तक ने बुद्धि के विषय में बताया है –

''जहाँ सुमति तह संपति नाना।''

संस्कृत ग्रन्थों में भी बुद्धि का वर्णन अनेक बार हो चुका है।

मनुष्य संसार के समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि एक तो उसके पास आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं दूसरा उसके पास जो बुद्धि है उसका प्रयोग वह उचित प्रकार से करता है। यद्यपि बुद्धि संसार के अन्य जीवों के पास भी है परन्तु वे उसका यथोचित प्रयोग नहीं कर पाते हैं।

यदि मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बुद्धि का स्वरूप देखें तो बुद्धि के विषय में किसी का एक ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिस पर सभी मनोवैज्ञानिक एकमत हो सकें। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि बुद्धि एक शक्ति है जो जन्मजात है अर्थात् जो जन्म से ही प्राप्त होती है। इसे ज्ञान की तरह बाद में प्राप्त नहीं किया जा सकता है। बुद्धि वह शक्ति मानी जा सकती है जो हमारी कठिनाइयों या समस्याओं को दूर करती है तथा सफलताओं के साथ जीवन को संचालित करती है। अर्थात् यदि हमें कोई समस्या आती है जो हम बुद्धि की सहायता से ही समाधान करने का तथा प्रयास करते हैं तथा प्रयास करते–करते सफल हो जाते हैं। बुद्धि है क्या इस विषय में हमारे मनोवैज्ञानिक भी अपने मत प्रस्तुत करते रहे हैं–

मनोवैज्ञानिक **स्टन** ने बताया कि **''बुद्धि सामने आयी नवीन परिस्थितियों के साथ सामजजस्य करने की योग्यता है।''** अर्थात् हमारे सामने किसी भी कठिनाई के आने पर सूझबूझ से उसे हम जिस शक्ति के द्वारा हल कर लेते हैं उसे बुद्धि कहते हैं।

तो दूसरी ओर **बिने** ने बताया है कि **''किसी समस्या को समझना, उसके विषय में तर्क करना तथा एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचना बुद्धि है।''** मनोवैज्ञानिक **टरमैन** ने बताया कि **''अमूर्त वस्तुओं के विशय में सोचना अर्थात् ऐसी वस्तुएँ जिनका साकार रूप नहीं है, के विषय में चिन्तन करना ही बुद्धि है।''**

इसी प्रकार **स्पियरमैन** ने बताया **''बुद्धि एक ऐसी सामान्य शक्ति है जो मस्तिष्क के समस्त कार्यों में विद्यमान रहती है। उसके बिना मस्तिष्क से सम्बन्धित कोई कार्य किये नहीं जा सकते हैं।''** **थार्नडाइक** जो कि एक विश्वविख्यात मनोवैज्ञानिक रहे हैं उन्होंने बुद्धि के तीन प्रकार बताये हैं –

प्रथम प्रकार 'अमूर्त बुद्धि' है जो अर्जित ज्ञान के प्रति हमारी रूचि, रूझान तथा पुस्तकों में बने हुए प्रतीकों तथा समस्याओं को हल करने में सहयोग करती है। **सामाजिक बुद्धि** की सहायता से व्यक्ति समाज के अनुकूल आचरण करता है। **यान्त्रिक बुद्धि,** यांत्रिक बुद्धि में जगत के साथ व्यक्ति भौतिक सामन्जस्य स्थापित करता है।

बिने ने बताया है कि बुद्धि एक इकाई है जिसमें वह सक्रिय होकर एक ही प्रकार का कार्य करती है तो दूसरी ओर **स्पियरमैन** ने बताया बुद्धि का प्रयोग सामान्य कार्यों में भी किया जाता है तथा विषेष कार्यों में भी किया जाता है। फिर **बहुत्व सिद्धान्त** का प्रतिपादन **थार्नडाइक** द्वारा किया गया उन्होंने बताया बुद्धि कई प्रकार की शक्तियों का समूह है। थार्नडाइक का यही सिद्धान्त सर्वमान्य हो सका। वहीं हमारा भारतीय शिक्षा दर्शन अपने आप में अद्वितीय तथा विशिष्ट रहा है। जिसने बुद्धि को चिन्तन तर्क, मनन आदि का नाम दिया है।

भारतीय ग्रन्थों में **'विद्या'** शब्द **'बुद्धि'** को अभिहित किया गया है। 'विद्या' का तात्पर्य है 'बुद्धि' क्योंकि विद्या बुद्धि की सहायता से ही प्राप्त हो सकती है। हम चिन्तन करते हैं तथा चिन्तन बुद्धि स्वरूप है। अतः भारतीय चिन्तन में **'सा विद्या या विमुक्त्ये'** को प्रधानता दी गयी है। विद्या विमुक्ति प्रदान करती है। अर्थात् चिन्तन के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है वह मुक्तिदायक है। यह मुक्ति सत्+चित् तथा आनन्द द्वारा प्राप्त होती है। भारतीय दर्शन के अतिरिक्त पाशचात्य दर्शन में भी बुद्धि को चिन्तन के नाम से जाना गया है तथा पाशचात्य दार्शनिकों ने भी अपने–अपने विचारों के आधार पर चिन्तन को परिभाषित करते हुए बताया है

जार्ज एफ नेलर ने बताया – **''दर्शन अत्यधिक सामान्य एवं व्यवस्थित तरीके पर विश्व में प्रत्येक वस्तु के बारे में, समग्र यथार्थ के बारे में चिन्तन का पयास करता है।''**

इण्ट्रोडक्शन इन द फिलोसोफी ऑफ एज्युकेशन,

भारतीय शिक्षा दर्शन बौद्धिक एवं भावमय चिन्तन से सदैव युक्त रहा है उसकी अपनी अलग विशेषता रही है। जिसमें शिक्षा में केवल अनुकरण को बढ़ावा मिलने पर ही बल नहीं दिया गया है अपितु बताया गया है कि छात्रों को अधिक से अधिक किसी विषय या प्रकरण पर चिन्तन तथा मनन के लिये प्रोत्साहित किया जाये। क्योंकि छात्र हमारा भविष्य है तथा यह ज्ञान को आगे बढ़ाते रहेंगे तथा आगे आने वाली पीढ़ियाँ इससे लाभान्वित होती रहेंगी।

वैदिक युग में रटने पर वि"ोष बल दिया जाता था। यद्यपि ऋषि, मुनि वनस्थलों में तप करते रहते थे तथा चिन्तन एवं मनन भी करते थे परन्तु शिक्षा प्रणाली पूरी तरह रटने पर आधारित थी। जबकि किसी भी विषय का गूढ़ ज्ञान प्राप्त करने के लिए गहन चिन्तन की आव"यकता होती है। **उपनिषदों** में मनन जो कि बुद्धि से सम्बन्धित है के विषय में कहा गया है – **'आत्मा न अरे, दृष्टव्यः, मन्तव्यः निदिध्यासितव्यश्च'** – वेद हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ हैं, समस्त ज्ञान से सम्बन्धित बातें तथा पूजा विधि वेदों में मिलती हैं। वेदों ने बुद्धि का अर्थ ज्ञान से लगाया तथा उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए कर्मों के महत्त्व को स्वीकार किया। ज्ञानकाण्ड में आध्यात्म के चिन्तन को महत्त्व दिया गया है अतः वैदिक शिक्षा दर्शन एक विशेष प्रकार की चिन्तन धारा है जिसमें प्राप्त ज्ञान का चिन्तन किया जाता है। ऋग्वेद जो कि हमारा प्राचीनतम ग्रन्थ है उसमें **सरस्वतीसूक्त** के कुछ मंत्र जो कि ज्ञान या विद्या से सम्बन्धित हैं, वे बताते हैं –

''पावकाः नः सरस्वती। यज्ञ वष्डधियावसुः ।।
चोदयिती सुनृतानां चेतन्ती समतीनाम। यज्ञं दृधे सरस्वती ।।
महोअर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुन। धिया विश्वा वि राजति ।।

इसका अर्थ बताया गया है विद्या हमें पवित्र करने वाली है, अन्नों को देने के कारण अन्न वाली है, बुद्धि से होने वाली अनेक कार्यों की प्रेरणा देने वाली, सुमतियों को बढ़ाने वाली, यह विद्या हमारे यज्ञ को पूर्ण धारण करती है। यह विद्या ज्ञान के जीवन के बड़े महासागर को स्पष्ट दिखाती है। यह विद्या सब प्रकार की बुद्धियों पर विराजती है।

अर्थात् विद्या द्वारा हमें उचित तथा अनुचित का ज्ञान हो जाता है। तब हम स्वतः ही अनुचित कार्य त्याग देते हैं। दुर्बुद्धि को दूर करके यह विद्या सुबुद्धि लाती है। पूजा पाठ यज्ञादि करने में सफलता हमें इसी की सहायता से प्राप्त होती है। बुद्धि का परिष्करण कर उचित राह इसी विद्या की सहायता से ज्ञात होती ळें वहीं हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ **ऋग्वेद** तथा **यजुर्वेद** ने बुद्धि के विकास के बारे में बताया है –

''या मेधा दवगणाः पितरश्चोपासते।
तयामाद्य मेधया अग्ने मेधाविनं कुरू।''

यजुर्वेद मंत्र–19

यह मंत्र हमें यह बताते हैं कि किस प्रकार से ज्ञान तथा बुद्धि को बढ़ाने के लिए उपासना की जाये। वैदिक शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्दे"य ज्ञान में वृद्धि करना था तथा बुद्धि को विकसित करना था जब हम बुद्धि को विकसित कर पायेंगे तभी हम ज्ञान की प्राप्ति कर ज्ञानी बन पायेंगे।

''बौद्धिक प्रशिक्षण धार्मिक शिक्षण में केन्द्रित रहा उसका प्रयोजन था वेदों को समझना, प्राकृतिक आध्यात्मिक पिता के प्रति श्रृद्धा विकसित करना तथा इस प्रकार ब्रह्म से साम्यता प्राप्त करना।''

प्रो. पी.आर.नायर

वैदिक काल में चिन्तन–मनन को विशेष महत्त्व दिया जाता था। वनों में ऋषि, मुनि जाकर चिन्तन किया करते थे, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ध्यान लगाते थे। चिन्तन मनन बुद्धि की प्रमुख शक्तियाँ हैं जो बुद्धि से उद्भूत हुई हैं। **प्रा. के. दामोदरन** ने चिन्तन के विषय में बताते हुए कहा है **''किसी वस्तु के ज्ञानार्जन के लिए कदम–कदम आगे बढ़ने की मानव चिन्तन की प्रक्रिया का विशद वर्णन एक अनूठी साहित्यिक सृष्टि है। यह उन आदिकालीन दार्शनिकों के विश्लेषणात्मक मस्तिष्क का परिचय देती है जो अपनी खोज के विषय पर पूरी तत्परता से चिन्तन तथा मनन करते थे।''**

भारतीय चिन्तन परम्परा, पृष्ठ 581

उपनिषद ग्रन्थ वेदों के बाद के हैं। उपनिषदों का अर्थ है – गुरू के समीप बैठकर ज्ञान प्राप्त करना। उपनिषदों में कुछ प्रमुख कोष बताये गये हैं उनमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय हैं जिनमें मनोमय सर्वप्रमुख है जिसका तात्पर्य बुद्धि से लगाया जाता है। यह उपनिषदों का चतुर्थ कोष है जो मन के गुण संवेदना, कल्पना, चिन्तन तथा स्मरण आदि शक्तियों के विषय में बताता है। यह बताता है कि यह समस्त मस्तिष्क की शक्तियाँ हैं तथा यह मस्तिष्क बुद्धि का ही पर्याय है। मनोमय कोष व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं, व्यक्ति की योग्यताओं से सम्बद्ध है। इसका तात्पर्य मस्तिष्क के उचित विकास से लगाया जाता है।

प्राचीनतम भारतीय संस्कृति के विषय में विषद विवरण हमारे दो प्राचीनतम ग्रन्थों **रामायण** तथा **महाभारत** में ही मिलता है। यदि हम महाभारत ग्रन्थ के विषय में चिन्तन करें तो यह बात हमें दृष्टिगत होती है कि महाभारत महाकाव्य के भिष्म पर्व का उपपर्व गीता है। चूँकि महाभारत के युद्ध के प्रथम दिन ही भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से गीता प्रादुर्भूत हुई इसी कारण इसका नाम **श्रीमद् भगवद् गीता** पड़ा। गीता की अनूठी विशेषता यह है कि यह ज्ञान, कर्म तथा भक्ति तीनों के विषय में बखान करती है। इस कारण यह तीनों का अद्वितीय संगम है।

यदि गीता के समय के विषय में अनुमान लगायें तो पता चलेगा कि यह सम्भवतः पाँचवीं शताब्दी में अपने लेख के रूप में आयी। इसमें कौरवों तथा पाण्डवों के माध्यम से जीवन संघर्ष का ज्ञान प्राप्त होता है तथा आत्मचिन्तन का बड़ा अनुपम ज्ञान प्राप्त होता है।

हम देखेंगे कि हर व्यक्ति का अपना ही मनोभाव होता है, अपनी मनःस्थिति होती है तथा हर युग की अलग मानसिकता अथवा सोच होती है। हर युग का अलग दर्शन होता है। गीता भी दार्शनिक ग्रन्थों में जीवन के संघर्षों से छूटकारा पाने के उपायों को ढूंढने का प्रयास करती है। गीता का ज्ञान निष्काम कर्म अर्थात् बिना फल की इच्छा के किये कर्म को महत्त्व देते हुए कहता है –

''एशा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगेत्विमांश्रृणु ।

बुद्धया युक्तो यथा पार्थ कर्मबन्ध प्रहारयसि ।।''

भगवद्गीता, द्वितीय अध्याय, श्लोक 39

इसका अर्थ है –
हे पार्थ ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञान योग के विषय में कही गयी है। इसी को निष्काम कर्म योग के विषय में सुन कि जैसा बुद्धि से युक्त हुआ। तूकर्मों के बन्धान को अच्छी तरह से ना करेगा।

श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए कहते हैं कि इसी बुद्धि की सहायता से तू कर्म के बन्धानों से मुक्त हो जायेगा। यह बुद्धि निष्काम कर्म के लिए प्रेरित करेगी। अर्थात् जब व्यक्ति फल की इच्छा त्याग देता है तथा कर्म करता जाता है तभी बुद्धियुक्त कहा जाता है।

गाँधीजी ने अपने दर्शन में **अनासक्ति भाव** तथा **श्री अरविन्द** ने **दिव्य कर्म की सम्भावना गीता के निष्काम कर्म** से प्रेरित होकर ही ली है। भगवद्गीता जिसने हर युग के प्राणियों को कर्मफल का उचित अर्थ समझाया तथा कर्म पर अधिकार का महत्त्व उपदेश दिया, न कि फल की इच्छा पर, में 18 अध्याय हैं तथा 700 श्लोक हैं। भगवद्गीता हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ महाभारत का ही अंग है। प्रारम्भ के छः अध्याय हमें बताते हैं कि ई"वर क्या है ? सम्पूर्ण वि"व की सृष्टि कैसे तथा कहाँ से हुई ? ये आगे के अध्याय बताते हैं तथा अन्तिम अध्याय आत्मज्ञान का उपदेश देता है। जो बताता है आत्मा क्या है, इसका स्वरूप क्या है, किस तरह से आत्मा को समझा जा सकता है? चूँकि गीता तत्त्व ज्ञान की व्याख्या करती है, धर्म को बताती है, नीति से सम्बन्धित बातों को बखान करती है। इसके समस्त तत्त्वों को स्वयं में समेटने के कारण हमारे राष्ट्रपिता गाँधीजी ने इसे जगमाता के नाम से पुकारा है।

हमारे प्रथम राष्ट्रपति **डा. राधाकृष्णन** ने बताया है **''गीता परस्पर विरोधी तत्त्वों का समन्वय करके उनमें एकीकरण करती है जिससे पूर्णता आती है।''**यह जगत परमात्मा का रूप है। अपनी आत्मा को जो कि सभी में समान है तथा ईश्वर का अंश है। जो उसे जान लेता है। वह ईश्वर को जान लेता है। अर्थात् सभी में परमात्मा का अंश आत्मा के रूप में विद्यमान है। आत्मा तथा परमात्मा के स्वरूप को पहचान लेना ज्ञान योग है तथा ज्ञान योग की सबसे बड़ी विशेषता समत्व योग है। गीता में इसे इस प्रकार बताया गया है–

''दूरेण ह्यावरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय
बुद्धौ भारणमन्विच्छ कृपणा फलहेतवा।।

भगवद्गीता, द्वितीय अध्याय, 49 श्लोक

समत्व का अर्थ हम लगा सकते हैं समान भाव। कोई भी परिस्थिति हमारे सामने उपस्थित हो उसमें समान भाव रखना अर्थात् दुख में न द:ुखी होना तथा सुख में न सुखी होना, यह समत्व तभी आता है जब हम माया, मोह से ऊपर उठ जाते हैं। निष्काम भाव से कर्म करते हैं। जब हम ब्रह्म ज्ञान या आत्मज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं, हम आत्म मन्थन या आत्म चिन्तन करने लगते हैं। वस्तुतः चिन्तन करना, मनन करना, धारण करना ये सभी बुद्धि की शक्तियाँ हैं। उस ब्रह्म का चिन्तन किया जाये फिर उसका मनन करना चाहिए अन्ततः उसके स्वरूप को चित्त में धारण कर लिया जाना चाहिए।

उपर्युक्त श्लोक के माध्यम से श्रीकृष्ण ने बताया है कि इस समत्वरूप बुद्धियोद्धा से सकाम कर्म अत्यन्त तुच्छ हैं इसलिए हे धनंन्जय! समत्वबुद्धि योग का आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल की वासना वाले अत्यन्त दीन हैं। अर्थात् यदि व्यक्ति सुख–दुख में समभाव रहता है तो वह केवल कर्म करता रहता है। फल की इच्छा त्याग देता है। वह सत्कर्म ही करता है। व्यक्ति परमार्थ करता जाता है। जैसा कि हिन्दी कवि **कबीरदास** ने परमार्थ के विषय में बताया है –

''वृक्ष कबहू नहि फल चखौं नदी न संचे नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा शरीर ।।''

समत्व बुद्धि युक्त व्यक्ति परमार्थी हो जाता है। भगवद्गीता के **द्वितीय अध्याय का 5.वा श्लोक** समत्वबुद्धि के विषय में यह बताता है –

''बुद्धियुक्ता जहातीह उभे सुकृतदुश्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ।।

हम पाप तथा पुण्य के विषय में विचार नहीं करतें हैं। पाप तथा पुण्य अर्थात् अच्छे तथा बुरे को इस लौकिक जगत में ही त्याग देते हैं। अर्थात् **तुलसी** की इन पंक्तियों को सत्य स्वीकार करते हुए **'जानहि तुमहिं तुमहिं होई जाई'** ब्रह्म को जानने की चेष्टा करता है वह उसी में लीन हो जाता है वह **उपनिषदों** के इस वाक्य **'अहंब्रह्मास्मि'** को सत्य कर देता है। श्रीकृष्ण ने गीता के उपर्युक्त श्लोक में अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा दी है।

बुद्धि के विषय में समय–समय पर विद्वान अपना मत तो व्यक्त करते ही रहे हैं। इन्हीं में विद्वता की प्रतिमूर्ति **श्री राजगोपालाचारी** ने बताया है **''जब बुद्धि व्यक्ति के सभी आकारों में एक अविभाजित पूर्णता देखने में सहायता देती है तब इसे सही प्रकाश (ज्ञान) जानना चाहिए।''**

गीता वस्तुतः ब्रह्म के विषय में बताती है। जीव क्या है तथा जगत क्या है इसकी व्याख्या करती है। माया असत्य है यह प्रमाणित करती है। गीता का ज्ञान हमें जीवन में उतारने हेतु जो उपदेश देता है वह है कि कर्म से भक्ति की उत्पत्ति होती है, भक्ति से ज्ञान उद्भूत होता है, फिर ज्ञान प्राप्त होने से व्यक्ति सर्वज्ञ हो जाता है जो अच्छा, बुरा, सही, गलत का भेद समझ सकता है। तत्प"चात् व्यक्ति पूर्ण हो जाता है या ब्रह्म का चिन्तन करता है तो पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है। चिन्तन का तात्पर्य बुद्धि से है। गीता में श्रीकृष्ण समत्वबुद्धि से युक्त हुए अर्जुन को स्वार्थरहित कर्म करने का उपदेश देते हैं जिसमें बताते हैं समत्वबुद्धि से युक्त होने पर मनुष्य स्वार्थ का त्याग कर देता है। यह श्लोक जो कि **भगवद्गीता के अट्ठारहवें अध्याय का 57वा श्लोक है**, के माध्यम से बताया है –

''चेतसा सर्वकर्माणि मयिसन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित् सततम् भवः।।''

हे अर्जुन समत्व बुद्धियुक्त निष्काम कर्म को आलम्बन करके निरन्तर मेरे चित्त वाला हो। हम देखेंगे कि अर्जुन के सम्मोहन को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो प्रेरणात्मक उपदेश दिया है, उसका आधार समत्व बुद्धि ही है। गीता के समस्त उपदेश समत्व बुद्धि से प्रेरित हैं। गीता में सम्पूर्ण कामनाओं या इच्छाओं को त्यागने वाला मनुष्य स्थितप्रज्ञ कहा गया है। मनुष्य वस्तुतः इच्छाओं का दास होता है। उन्हें त्यागने पर आत्मा से आत्मा का मिलन सम्भव है तथा यह मिलन ही स्थितप्रज्ञ बुद्धि वाले व्यक्ति का लक्षण माना जाता है। जो गीता में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिये गये उपदेश में दृष्टिगत होता है –

''प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थमनोगतान् ।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थित प्रज्ञस्तदोच्यते ।।

भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय का 55वा श्लोक

अर्जुन के सम्मोह को दूर करने के लिए श्रीकृष्ण ने तर्क वितर्क, विष्लेषण, विचार, विमर्श, चिन्तन, बोध, आदि विधियों का जो प्रयोग किया है यह सभी बुद्धि की ही शक्तियाँ हैं। हमारे भारतीय साहित्य, हमारे संस्कृत ग्रन्थ तथा हमारे मनोवैज्ञानिक बुद्धि को लौकिक तथा पारलौकिक दोनों दृष्टि से विशेष महत्त्व देते रहे हैं। ज्ञान द्वारा अन्तिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। बौद्धिक जगत या ईश्वर की प्राप्ति होती है तो दूसरी ओर बुद्धि लौकिक जगत में वैज्ञानिक प्रगति पर बल देती है। बुद्धि मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करती है। मनुष्य के शरीर को संचालित करने का कार्य भी बुद्धि ही करती है। बुद्धि ही व्यक्ति को बल प्रदान करती है। तभी संस्कृत के नीति ग्रन्थों में **''बुद्धिर्यस्य बलमतस्य''** कहा गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. चट्टोपध्याय,(2009). भारतीय दर्शन, पुस्तक भण्डार, पटना।

2. पाण्डेय, रामशकल (2009). शिक्षादर्शन, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. शर्मा,आर.ए. (2006).तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा, मूल्य मीमांसा एवं शिक्षा, आर.लाल. प्रकाशन, मेरठ।
4. Basant Annie Bhagwat Gita, (1998). Adyar Theosophical Publishing House.
5. Guru, Natraj (2001). Bhagwat Gita, Asia Publishing House, New Delhi.
6. Pandey, R.S. (2010). An Introduction to major philosophies of education, Vinod Pustak Mandir, Agra.
7. Sinha, J.N. (1962).A history of Indian Philosophy, Vol. II, Calcutta.